तेवरीपक्ष-२३

तेवरी-विधा को समर्पित प्रस्तुति

वर्ष: 32, अंक: 1, 2015, मूल्य ₹15, वार्षिक: ₹50

तेवरी

नित लूट डकैती राहजनी
पर चोर न पकड़ा जाय। रे हाय!!
जिनके पीछे सीबीआई
उनको ही रही बचाय। रे हाय!!
अब संविधान के रखवाले
काला धन रहे कमाय। रे हाय!!
संसद में गरजे हर नेता
बस झूठ-मूठ टकराय। रे हाय!!
कैसे सिस्टम बदले बहिना
अब खोजो नया उपाय। रे हाय!!

- रमेशराज

संस्थापक
लोककवि स्व. श्रीरामचरन गुप्त
परामर्श
डॉ. गोपाल बाबू शर्मा
दर्शन बेज़ार, अशोक कुमार यादव
संपादक- रमेशराज
मो. 09634551630

Scanned by CamScanner

तेवरी इसलिए तेवरी है

तेवरी एक ऐसी विधा है जिसमें जन-सापेक्ष सत्योन्मुखी संवेदना अपने ओजस स्वरूप में प्रकट होती है। तेवरी का समस्त चिन्तन-मनन उस रागात्मकता की रक्षार्थ प्रयुक्त होता है, जो अपने सहज-सरल रूप में नैतिक, निष्छल, निष्कपट और प्राकृतिक है। रागात्मकता की यह प्राकृतिकता आपसी प्रेम, भाईचारे अर्थात् मानवीय सम्बन्धों की प्रगाढ़ता, सद्‌भाव के मंगलकारी विधान में अभिवृद्धित, अभिसंचित, पुष्पित-पल्लवित और उत्तरोत्तर विकसित होती है। प्रेम-तत्व का उद्‌दात्त, सदाचारी, सर्वमान्य रूप या स्वरूप यदि मर्यादा का पालन करते हुए शोभायमान हो तो तेवरी के लिए सहज ग्राह्‌य है। तेवरी प्यार का नहीं, प्यार के व्यापार का विरोध करती है। तेवरी शृंगार के नहीं, पापाचार या व्यभिचार के खिलाफ अपनी त्यौरी बदलती है। यही तेवरी का तेवरीपन है।

तेवरी ऐसे 'तेवर वाली भाव-भंगिमा' है जो प्यार के संसार पर प्रहार करने वालों के विरोध में मानवीय चेतना को अग्नि-धर्म निभाने को प्रेरित करती है। तेवरी के बारे में यह धारणा पूरी तरह भ्रामक है कि तेवरी में प्रेम-तत्त्व की वर्जना है। फिर भी तेवरी को लेकर साहित्यकार श्री रामेश्वर हिमांशु काम्बोज कहना है कि-''प्रेम-प्यार भी कोई छूत की बीमारी नहीं है। हम रोजमर्रा की ज़िन्दगी में इसके लिए तरसते हैं...(तेवरीपक्ष अंक-5, वर्ष-2, 1984, पृ.5)

तेवरी के संदर्भ में काम्बोजजी का उपरोक्त आरोप इसलिए अनुचित है क्योंकि तेवरी की दृष्टि प्रेम-प्यार में लिप्त होने से पूर्व उस 'प्रेम के लिए तरसने' को समाप्त करने पर टिकी है जिसके कारण अनास्था, घात-प्रतिघात, अविश्वास, अवज्ञा, अपमान आदि का वातावरण बनता है। तेवरी इसी वातावरण में मिठास घोलने के लिए संकल्परत है। मिठास घोलने के इस संकल्प का विकल्प यदि तेवरी का तिरोभाव से भर कर उग्र हो जाना है तो इस उग्रता को महज गालीगलौज क्यों माना जा रहा है? तेवरियों को पढ़कर साहित्यकारों के मन में ये विचार क्यों आ रहा है-'' तेवरियाँ पढ़कर हमारे भी तेवर बदल गये। बस हाथ में ले लिया डंडा, अब आप बताइए किसके सर पर दे मारूँ।'' (कालीचरण प्रेमी, तेवरीपक्ष-3, 1984, पृ.8)

बयानों से स्पष्ट है कि ये विद्वान तेवरी के मंगलकारी अभिप्राय को समझने के बजाय डंडे का इस्तेमाल तेवरीकारों पर ही करना चाहते हैं। वह आतातताई-बर्बर समाज जो रति-क्रिया करते कौंच-युगल को तीरों से घायल करता है, उस युगल की वेदना को आज के ये बाल्मीकि जान-बूझकर या अन्जाने समझना नहीं चाहते। साहित्य के ऐसे बाल्मीकियों का दूसरे बाल्मीकि की चाँद लहूलुहान करना उस वर्ग को खाद-पानी देकर और ताकतवर बनाना है जो क्रौंच-युगल के साथ-साथ उस बाल्मीकि पर भी कुपित है, जिसकी आँखों में क्रौंच-युगल की रति-व्यथा के आँसू हैं, आक्रोश है।

तेवरी की दृष्टि रोटी खाने-पकाने वाले पर नहीं, बल्कि उस दुष्ट पर है जो रोटी पकाने-खाने वाले के हाथों से रोटी छीन लेता है और उसे खाता नहीं, उससे खेलता है या

Scanned by CamScanner

उसका व्यापार करता है। गोदामों में गरीब के हिस्से के अन्न-सब्जी-दाल को भरने वाले व्यापारी की मक्कारी को लेकर यदि तेवरी कुपित और आक्रोशित है तो तेवरी के इस तेवर को पहचानने-मानने के बजाय इस तेवर को विरुद्ध ही खड़े होना कौन-सी समझदारी का नमूना है?

तेवरी में तेवर को लाने-दर्शाने से पहले तेवरीकारों को आत्मशुद्धि के पाठ पढ़ाने वालों की भी कमी नहीं है। श्री शम्भुदयाल सिंह 'सुधाकर' का भी स्वर कालीचरन 'प्रेमी' जैसा है। वे कहते हैं- ''हे कवियो- है तुममें कोई जिसने कुदृष्टि के लिए अपनी आँख को ललकारा हो। नानाविधि विकारों से युक्त अपने मन को सचेत किया हो?तेवरी के लिए आवश्यक है-सबसे पहले अपनी शारीरिक व मानसिक व्यवस्था जो हर इकाई में तिरोभाव को प्राप्त कर चुकी है, के विरुद्ध जेहाद उठाया जाये।'' (तेवरीपक्ष, परिचर्चा अंक-1, पृ.31)

काँटे का सवाल यह है कालीचरन 'प्रेमी' या 'सुधाकर' जैसे साहित्य के रत्नाकर तेवरी को लेकर इतने भ्रमित, असंयमित या आक्रोशित क्यों है? दरअसल ऐसे लोगों के भीतर उठती शंकाओं, पीड़ाओं के गुबार या बवंडर का सार यह है कि तेवरी को तेवरी नहीं, ग़ज़ल कहा जाए। इस मुद्दे पर बहस करने के बजाय चुप ही रहा जाए। इस मुद्दे पर तेवरीकारों को धमकाने के अंदाज देखिए-''समझदार हो गये हो तेवरी के साथ। सुधरने का क्या लोगे?पहले सामान्य आदमी बनो, साहित्यकार तो बन ही जाओगे? (नंदल हितैषी, तेवरीपक्ष, अ.-जू.-1989, पृ. 12)

''तेवरी नाम देकर क्या तीर मारा गया?तेवर शब्द से तेवरी बना लिया गया, जो केवल भावपक्ष को प्रकट करता है। वस्तुतः तेवरी और ग़ज़ल के विधान में कोई फर्क नहीं है।'' (चेतन दुवे अनिल, तेवरीपक्ष, अग.-सित. 08, पृ. 11)

''भगवान करे (या रमेशराज करे) तेवरी भी साहित्यिक विधाओं में गिन ली जाये और देवराजों, सुरेश त्रस्तों, अरुण लहरियों का कल्याण हो जाए। कोई पूछे कि सा'ब तेवरी कहाँ मैन्यूफैक्चर होती है तो झट मुँह से निकलेगा-अलीगढ़। अलीगढ़ को ऐसी ऊँचाइयाँ प्रदान करने वाले रमेशराज को मेरा आदाब। (ज्ञानप्रकाश विवेक, तेवरीपक्ष वर्ष-1984, अंक-5 पृ.6)

''आप ग़ज़ल को 'तेवरी' क्यों कहना चाहते हैं?ग़ज़ल जैसे लोकप्रिय शब्द के होते 'तेवरी', 'गीतिका', 'ग़ज़लिका' जैसे शब्दों को चलाने की आवश्यकता क्या है?'' (डॉ. सुधेश, तेवरीपक्ष, अप्रैल-सित.08, पृ.14)

''इस तथ्य में कोई शक नहीं कि तेवरीकार स्वयं को महान साबित करने की नाकाम कोशिश कर रहे हैं। किसी तमाशगीर जमूरे की तरह चीख-चिल्लाकर ग़ज़ल के संदर्भ में भ्रामक, बचकाने, नासमझी-भरे बयान देकर भीड़ जुटा रहे हैं। तेवरी के दिशाहीन मैदान में वे भी तेजी से दौड़ लगाने लगे हैं, जो ग़ज़ल की महफिल में इज्जत नहीं बचा सके हैं। इस जालसाजी में कुछ बेशर्म किस्म के लघुकथाकार भी शामिल हो गये हैं जो पहले ग़ज़ल लिखते रहे हैं। (तारिक असलम तस्नीम, तेवरीपक्ष जन.मार्च.-84, पृ.9)

''तेवरी लिखने वाले यदि अपने को कवि लिखने के स्थान पर तेवरीबाज लिखने लगें तो कविता से पृथक तेवरी भी एक विधा हो सकती है। सतर्क रहिए, भविष्य में 'घेवरी' और 'पेवरी' आदि विधाएँ भी पीछा करेंगी। (शम्भुदयाल सिंह 'सुधाकर', तेवरीपक्ष अ.-जून-84, पृ.5)

Scanned by CamScanner

उपरोक्त सभी बयानों के माध्यम से 'तेवरी' के विरुद्ध की गयी चीख-पुकार का सार केवल यही निकलता है कि या तो तेवरीकार 'ग़ज़ल जैसे लोकप्रिय शब्द' के आगे घुटने टेक दें, नहीं तो उन्हें अपशब्दों के व्यंग्य-वाण ऐसे ही झेलने पड़ेंगे। तेवरी को जबरदस्ती ग़ज़ल मनवाने की यह सलाह तेवरीकारों को साहित्यकार कहलाये जाने के लिये कितनी जरूरी और तर्कसंगत है, इसके लिए ग़ज़ल की उस महफिल को समझ लिया जाये जिसमें तेवरीकार और बेशर्म किस्म के कुछ लघुकथाकार अपनी इज्जत नहीं बचा पाये तो 'तेवरी' के दामन से लिपट कर-'तेवरीबाज' हो गये हैं। शायद इस प्रकार 'तेवरी' के गले में पेवरी' और 'घेवरी' की घंटी न बँधे।

ग़ज़ल क्या है?

ग़ज़ल का सर्वविदित अर्थ है- 'प्रेमिका से प्रेमपूर्ण बातचीत'। ग़ज़ल में इस बातचीत की रीति 'मतला', 'मक्ता', 'शे'रों की स्वतंत्र सत्ता' के माध्यम से 'रदीफ-काफियों' और 'बह्र' के साथ निभायी जाती है। मतला शे'र की दोनों पंक्तियों में स्वर के बदलाव के आधार को लेकर काफिये मिलाये जाते हैं। शेष शे'रों के काफिये पहली पंक्ति को छोड़कर दूसरी पंक्ति से मिलाये जाते हैं। एक ग़ज़ल, एक नहीं, अनेक मतला शे'रों के साथ भी कही जा सकती है, किन्तु पूरी ग़ज़ल में एक ही बहर (छंद) का प्रयोग होता है। काफिये के बाद जो शब्द ज्यों कि त्यों आते हैं उन्हें रदीफ कहा जाता है। ग़ज़ल में बह्र लयात्मक ओज 'रुक्न' और 'अर्कान' के माध्यम से भरती है।

तेवरी क्या है?

जहाँ तक तेवरी के शाब्दिक अर्थ, उसके आत्मरूप अर्थात् चरित्र की बात है तो-" तेवरी' शब्द ही अपने आप में परिभाषा, स्वरूप तथा स्वतंत्र अस्तित्व-बोध का परिचय देता है। वस्तुतः तेवरी-अर्थात् तेवरवाली अभिव्यक्ति से परिपूर्ण रचनात्मक नवचेतना का प्रतीक है। अभिव्यक्ति की भंगिमा, व्यंजना का स्वरूप तथा दृश्य जगत के युगीन यथार्थ की आन्तरिक बोध-शक्ति का अनुभव और चिन्तन की गहराई से उद्भूत होकर उपस्थित होती है। जिसमें युगीन विसंगतियों, मानव-जीवन के अस्तित्व के संकट से उत्पन्न प्रतिक्रिया स्वरूप आक्रोश, क्रोधादि के यथार्थ-चित्र हमें उद्वेलित एवं संत्रस्त जीवन के विविध पक्षों को साकार करते हैं। तेवरी में अभिव्यक्ति की भंगिमा ही मुख्य रूप से उसे काव्य-रचना की सतत प्रवाहवान धारा में नया स्थान प्रदान करने की व्यापक योग्यता रखती।" (डॉ. हरिवंश प्रसाद शुक्ल 'मधुकर', 'तेवरीपक्ष, जन.-मार्च-07, पृ. 15)

"तेवरी का उद्भव एक ऐसे समाज की देन है, जिसको विशेष रूप से राजनेताओं ने सताया है। जैसे कोई स्वतंत्र सिंहों की वनस्थली में मदमस्त हाथी अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहे। लोकतंत्र का प्रत्येक मानव स्वतंत्र सिंह है और नेता मदमस्त हाथी। उसका प्रभुत्व तभी तक है, जब तक कि चुनाव का चपेटा लोकतंत्र के मानव रूपी सिंहों द्वारा मदमस्त हाथी के कानों पर नहीं पड़ता। 'तेवरी' के कवि इस 'चपेटे' को नेताओं के कानों पर बुरी तरह से पड़वाने की तैयारी कर रहे हैं। एक प्रकार से तेवरी का सबसे प्रबल पक्ष शोषकवर्ग पर कुठाराघात करना ही है।(विशन कुमार शर्मा, तेवरीपक्ष जन.मार्च-84 पृ.44)

"'तेवरी' के अपने निजी तेवर हैं। अपनी-अपनी बौखलाहट है। आज बौखलाया,

Scanned by CamScanner

टूटा हुआ आदमी यदि अचानक मुँहफट हो जाए, मारने के लिए ईंट उठा ले, अधिकारों के लिए सीधे-सीधे गाली-गलौज पर उतर आये तो इसे हमें गरियाने की क्या जरूरत है?ग़ज़ल के हिमायती यह क्यों नहीं देखते कि वह क्या चिल्ला रहा है? क्यों चिल्ला रहा है?''
(चरनसिंह 'अमी', तेवरीपक्ष-ज.-मार्च-84, पृ. 38)

''तेवरी नाम है-उस तेवरयुक्त छंदबद्ध कविता का-जिसमें आकाश की बात नहीं, माटी की सुगन्ध है। जिसमें पाउडर या सेंट की सुगन्ध न होकर किसी श्रमिक का पसीना है।'' (योगेन्द्र शर्मा, तेवरीपक्ष, जन-मार्च-84, पृ. 29)

''तेवरी वसंत के उन्मादक रूप को नहीं निहारती, बल्कि उस पर टिकी आशाओं, सम्भावनाओं, विश्वासों के साकार रूप की नींव डालती है। तेवरी शान्त जल के ऊपर विहार करते हंसों के सौन्दर्य को नहीं निहारती, बल्कि बहेलिये के तीर से घायल हंस की आँखों में छुपी वेदना को टटोलती है। तेवरी नारी को साकी के रूप में नहीं चाहती बल्कि स्वार्थी समाज द्वारा उत्पीड़ित शोषित और छली हुई नारी की पीड़ा को अभिव्यक्ति देती है। तेवरी किसी शराबी के अंग-संचालन-परिचालन पर ध्यान केन्द्रित न कर, अपना सारा सोच उसकी विकृतियों पर लगाती है।'' (अरुण लहरी, तेवरीपक्ष-जन-मार्च-84, पृ. 27)

तेवरी सम्बन्धी उपरोक्त सारी परिभाषाओं, व्याख्याओं से तेवरी का जो रूप उभर कर सामने आता है, वह सत्योन्मुखी, मंगलकारी संवेदनशीलता से युक्त तो है ही, उसमें मानव-पीड़ा की करुणा भी रची-बसी है। करुणा का यही रचाव-बसाव उसे ग़ज़ल की तरह मादक-मदमस्त होने से ही नहीं बचाता, उसे जुझारू और संघर्षशील बनाता है जबकि ग़ज़ल के आत्मरूप के बारे में अरुण लहरी का कहना है-

''सामंती युग में जब अय्याशी खून बनकर रगों में दौड़ रही थी, उस वक्त कविता सामाजिक चेतना की मशाल नहीं, एक अय्याश की बदनसीब लौंडी थी। यह अन्त्यानुप्रास से बँधी कविता मरमरी जिस्म, मख्मूर आँखों, खमदार जुल्फों व मस्त अँगड़ाइयों से भरा पिटारा थी, जिसे यथा नाम तथा गुण के कारण 'ग़ज़ल' नाम से विभूषित किया गया।'' (तेवरीपक्ष, जन-मार्च-84, पृ. 53)

ग़ज़ल का एक अर्थ और भी है- ''ग़ज़ल के मूल में 'ग़ज़ाल' (हिरन का बच्चा) शब्द है। ग़ज़ल उस कराह को कहते हैं, जब एक ग़ज़ाल शिकारी का तीर लगने पर अपनी बेबसी में निकालता है।''
(विशनकुमार शर्मा, तेवरीपक्ष, जन.-मार्च-84, पृ. 44)

ग़ज़ल के बारे में जनाब फिराक गोरखपुरी का मानना है कि-''विवशता का दिव्यतम रूप में प्रकट होना, स्वर का करुणतम हो जाना ही 'ग़ज़ल का आदर्श' है।''

''ग़ज़ल शब्द मूलतः अरबी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है-'नारी के सौन्दर्य का वर्णन तथा नारी से बातचीत'। नालंदा अद्यतन कोष में ग़ज़ल का अर्थ-फारसी और उर्दू में ' शृंगार-रस की कविता' दिया गया है। लखनऊ हिन्दी संस्थान द्वारा प्रकाशित 'उर्दू-हिन्दी शब्द कोष' में ग़ज़ल का अर्थ 'प्रेमिका से वार्तालाप' है।'' (विनोद कुमार उइके 'दीप', ग़ज़ल से ग़ज़ल तक, पृ.20)

ग़ज़ल और तेवरी के उपरोक्त तुलनात्मक अध्ययन से यह तथ्य तो पूरी तरह स्पष्ट हो ही जाते हैं कि-ग़ज़ल यदि नारी के सौन्दर्य या नारी से प्रेमपूर्ण बातचीत के संदर्भों के साथ भोगवाद में प्रासंगिक है तो तेवरी की प्रासंगिकता उसके उन तेवरों के साथ है,

Scanned by CamScanner

जिनमें नारी को भोगविलास की वस्तु मानकर भोगा, अपमानित और प्रताड़ित किया जाता है। तेवरी ऐसी वृत्तियों-प्रवृत्तियों का खुलेआम विरोध करती है।

ग़ज़ल यदि शिकारी के तीर से घायल ग़ज़ल की कराह को प्रस्तुत करने का नाम है तो तेवरी उस बहेलिए के प्रति तीखा, आक्रोश से भरा बयान है जिसने ग़ज़ल को तीर से घायल करने का कुकर्म किया है।

तेवरी बहेलिये के तीर से घायल ग़ज़ाल की पीड़ा के ग़म को भुलाने के लिए न तो ग़ज़लकार की तरह मयखाने में जाती है और न घायल ग़ज़ाल को शराब पिलाती है। तेवरी तो ग़ज़ल के घाव पर शब्दों का मरहम लगाती है और ऐसा वातावरण तैयार करने में जुट जाती है, जिसमें कोई बहेलिया किसी भी ग़ज़ाल के तीर न मार सके।

तेवरी में करुणा की गति घायल ग़ज़ाल रूपी समाज की रक्षा की ओर है, जबकि ग़ज़ल में जो करुणा का शोर है वह नितांत व्यक्तिवादी और मनोरंजन का एक साधन मात्र है।

यदि विवशता के दिव्यतम रूप में प्रकट होने से स्वर का करुणतम हो जाना ग़ज़ल का आदर्श है तो तेवरी के स्वर में कठोरता, अत्याचारियों के प्रति उग्रता, विरोध और विद्रोह करने की क्षमता में उसकी पहचान है। अपनी इस जुझारू वृत्ति को ही कायम रखना तब तक तेवरी का आदर्श है जब तक वातावरण शोषण, अत्याचार, पापाचार, हाहाकार से मुक्त नहीं हो जाता।

वस्तुतः जब तेवरी, ग़ज़ल है ही नहीं तो ऐसे में उसके आक्रोश, असंतोष से भरे भावों-अनुभावों में ग़ज़ल के दर्शन करने वालों के मन के पागलपन को शांत करने के उपाय तेवरीकारों के पास हो ही क्या सकते हैं? फिर भी यह बताना-समझाना आवश्यक है कि जिस प्रकार एक जैसी शारीरिक संरचना होने के बावजूद भिन्न-भिन्न चरित्रों वाली औरतों को केवल औरत न मान कर मालकिन-नौकरानी, डायन-मंगला, देवी-कुलटा, नगरवधू-कुलवधू, रानी-दासी, माँ-बेटी, बहिन-पुत्री कहा-पुकारा जाता है, ठीक इसी प्रकार का अन्तर तेवरी और ग़ज़ल में है।

एक जैसे शरीर वाले दो व्यक्तियों के असमान व्यवहार हों तो एक को निकृष्ट प्रवृत्तियों के कारण 'नीच' तो दूसरे को सात्विक-श्रेष्ठ नैतिक और सौम्य व्यवहार के कारण 'संत' या 'देव-पुरुष' माना जाता है। क्या किसी गुण्डे या समाजसेवी के आँख-नाक-हाथ-पैर-मुँह के बीच कोई भिन्नता होती है? आँख-नाक-हाथ-पैर-मुँह तो दोनों के समान होते हैं, असमानता तो उनके व्यवहार के कारण होती है जिसके आधार पर एक को 'गुण्डा' तो दूसरे को 'समाज-सेवी' कहा जाता है।

अतः ग़ज़ल और तेवरी के शिल्प में ग़ज़लकारों को यदि किसी समानता के दर्शन होते भी हैं तो इसके आधार पर क्या तेवरी को ग़ज़ल कहा जा सकता है? यदि किसी के हाथों में प्याला या शराब की बोतल लगी हो और किसी दूसरे व्यक्ति के हाथ में तलवार लहरा रही हो तो क्या, इन दोनों व्यक्तियों की केवल हाथ की समानता को लेकर कोई मूल्यांकन किया जा सकता है? नहीं। वस्तुतः मूल्यांकन का आधार तो तलवार और बोतल बनेंगे! मिन्नत की अवस्था में जुड़े हाथ और क्रोध की अवस्था में मुट्ठी भिंचे हाथ की क्रिया एक समान कैसे हो सकती है? ठीक इसी प्रकार आक्रोशित आँखों की लालामी और विरह में-वेदना में जगी आँखों की सुर्खी में कोई फर्क नहीं है?

Scanned by CamScanner

शिल्प अर्थात् आँख-नाक-मुँह हाथ-पैर के आधार पर किसी व्यक्ति-वस्तु, या विधा का मूल्यांकन हो ही कैसे सकता है?जब चरित्र अर्थात् आत्मरूप बदलता है तो शिल्प में उसी के अनुरूप आमूल परिवर्तन आ जाता है। क्रोध-विरोध-विद्रोह, रति-भक्ति-हास हमारे आत्मरूप हैं, आन्तरिक दशा के प्रतीक हैं। यदि आन्तरिक दशा अर्थात् भाव-पक्ष में परिवर्तन आता है तो शिल्प-पक्ष तो अपने आप बदल जाता है। फिर भी मात्र शिल्प अर्थात् शरीर को लेकर 'तेवरी को ग़ज़ल मानने-मनवाने वालों की इस चिल्लपों का आखिर आधार क्या है? ऐसे ग़ज़ल-भक्तों के कुतर्कों का सार क्या है-आइए उसे भी परखें-

डॉ. महेश्वर तिवारी कहते हैं-'' तेवरी क्या है? दुष्यंत कुमार ने अपनी ग़ज़लों को तेवरी नहीं कहा। उन्हें आप किस खाने में फिट करेंगे?(तेवरीपक्ष-1, पृ.4)

डॉ. तिवारी के उपरोक्त सवाल के उत्तर में यह सवाल किया जा सकता है कि ग़ज़ल क्या है?क्या ''तमाम रात तेरे मैकदे में मय पी है, तमाम उम्र नशे में निकल न जाये कहीं', जैसी कहन का नाम ग़ज़ल है?या-'गिड़गिड़ाने का यहाँ कोई असर होता नहीं, पेट भरकर गालियाँ दो, आह भर कर बद्दुआ' (दोनों ही शे'र दुष्यंत कुमार) जैसे विद्रोही तेवर का नाम ग़ज़ल है। शराब के नशे में उम्रभर बहकते हुए ग़ज़ल यदि किसी को अत्याचारियों के खिलाफ पेट-भर गालियाँ-बद्दुआ देने के लिये उकसा रही है तो शराब के नशे में आये इस जोश और आक्रोश को क्या एक ही खाने में फिट किया जा सकता है?या क्या पुरुषत्व और नपुंसकपन के योग से बनी शक्ल का नाम ग़ज़ल है? डॉ. तिवारी के लिए यह ग़ज़ल का कमल हो सकता है, तेवरीकारों की 'तेवरी' नहीं।

ग़ज़ल के इस खिलते हुए कमल को लेकर अगर श्री राजकुमार सिंह यह कहते हैं कि -'' ग़ज़ल निस्संदेह खाली बैठे का चुहलपन और आँख बंद करके आम आदमी के साथ दोगलापन करना था। अब जर्जर मान्यताओं के प्रति तेवर कटु-यथार्थमय हों, बेहद जरूरी हो गया है। तेवरी यह साहसभरा कदम उठाने जा रही है, तो इसमें अजीब क्या है, अटपटा क्या है?(तेवरीपक्ष-1, वर्ष-1, पृ.3)

'तेवरी' नाम को संदिग्ध, विवादास्पद ऐसे ही ग़ज़ल-भक्त बना रहे हैं, जिन्हें न तो ग़ज़ल के परम्परागत शास्त्रीय अर्थ या अन्य सरोकारों से कोई लेना-देना है और न तेवरी के वास्तविक रूप-स्वरूप और चरित्र को समझना चाहते हैं।

ग़ज़ल के प्रखर प्रवक्ता श्री ज्ञान प्रकाश विवेक कहते हैं-''खूब लिखिए तेवरियाँ और खूब छापिए उन्हें तेवरीपक्ष में। लेकिन सवाल जरूर करुंगा-तेवरी को ग़ज़ल के शिल्प में क्यों लिख रहे है आप?'' (तेवरीपक्ष, जु.-दि. 84, पृ. 6)

प्रेमिका को बाँहों में भरने वाले और युद्ध के मैदान में तलवार और ढाल लेकर उतरने वाले हाथों की बनावट में क्या कोई अन्तर होता है? या दोनों कर्मों को करने के लिए अलग-अलग हाथ बनाये या लगाये जाते हैं?रति क्रियाओं में लीन शरीर जब क्रोध की तासीर ग्रहण करता है तो वाणी में मधुरता के स्थान पर कटुता आ जाती है। आँखें ज्वालामुखी-सी सुलगने लगती हैं। हाथों की अँगुलियाँ, मुट्ठियाँ बन जाती हैं, चेहरा सौम्य की जगह कठोर हो जाता है। अर्थात् पूरे शरीर में 'प्रणय निवेदन' के स्थान पर 'आक्रमण या उद्वेलन' तांडव करने लगता है। अर्थ यह कि भाव-पक्ष के बदलते ही शिल्प-पक्ष तो अपने आप बदल जाता है। भाव-पक्ष और शिल्प-पक्ष के इस बदलाव को ग़ज़लकार या ग़ज़ल फोबिया के शिकार ज्ञानप्रकाश विवेक जैसे साहित्यकार क्यों नहीं समझना चाहते?

Scanned by CamScanner

तेवरी ग़ज़ल की न कुर्ती है न पाजामी। न उसके कानों में कुन्डल है न पायल या नथ। तेवरी न शरीर को निखारती साबुन की बट्‌टी है और न होटों को सँवारती लिपिस्टिक। तेवरी न उरोजों को उभारता अधोवस्त्र है न रिझाने का कोई अस्त्र। तेवरी न आँखों का महीन-महीन काजल है न कोई आँखों का ऐसा जंगल है जो राह से भटका देता है। तेवरी तो ऐसे शरीर की साज-सँवार है, जिसके हाथों में तीर है, तलवार है। आँखों में धधकता हुआ अंगार है। कंधे पर लटकी हुई बन्दूक है। वक्षस्थल पर सुरक्षा कवच है। तेवरी अत्याचारियों से लड़ने का संकल्प है। इस संकल्प का नाम ग़ज़ल कैसे हो सकता है?

तेवरी और ग़ज़ल के इस अन्तर के जानकार तो यह स्वीकारते हैं कि- ''ग़ज़ल और तेवरी का विवेचन चटपटा और तीखा है। नुकीली और धारदार रचनाएँ सड़े-गले अंगों को काट फैंकने जैसी शल्यक्रिया है।'' (शकुन्तला सिरोठिया, तेवरीपक्ष-जन.-मार्च.-87, पृ. 41)

''तेवरी के स्वतंत्र अस्तित्व/आन्दोलन पर पुर्नविचार के लिए बाध्य हुआ। सतीशराज पुष्करणा ने तेवरी को ग़ज़ल का ही एक रूप माना था। तब से मन में यही धारणा थी कि तेवरी को ग़ज़ल से अलग मानना मूर्खता है, पर आपके अकाट्य तर्क तेवरी को ग़ज़ल से अलग करते हैं।'' (डॉ. स्वर्ण किरण, तेवरीपक्ष-जन.मार्च-87, पृ.41)

''ओजस्वी तेवरियाँ पढ़कर मन बरबस ही प्रशंसा करे को उत्सुक हो जाता है।'' (चन्द्रपाल सिंह यादव 'मयंक', तेवरीपक्ष, अप्रे.जून.89, पृ.11)

''ग़ज़ल एवं तेवरी में अन्तर स्पष्ट कर और तेवरी को परिभाषित कर स्तुत्य कार्य किया है।'' (तेवरीपक्ष-अप्रैल-जून-89, पृ.12)

''हिन्दी में नयी विधाओं के लिए सही वकालत की आवश्यकता रही है। आप तेवरी की तार्किक और प्रासंगिक वकालत कर रहे हैं।'' (डॉ. दयाकृष्ण विजय, तेवरीपक्ष-जन. -मार्च.-87,पृ. 41)

'भूख, गरीबी, बेरोजगारी अन्याय के खिलाफ कलम उठाना प्रशंसनीय ही नहीं, पूज्यनीय कार्य है।'' (त्रिलोक शास्त्री, तेवरीपक्ष-जन. मार्च. 87, पृ. 42)

''देश के कोने-कोने में व्याप्त भ्रष्टाचार-उन्मूलन हेतु अच्छी रचनाएँ प्रकाशित होनी ही चाहिए।'' (डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', तेवरीपक्ष-चार, पृ.4)

''तेवरी अब आपका नहीं, मेरा आंदोलन है।'' (डॉ. सूरज पालीवाल, तेवरीपक्ष-प्रवेशांक, पृ. 3)

''तेवरी आंदोलन से जुड़े रहने की लालसा है। (विक्रम सोनी, तेवरीपक्ष-प्रवेशांक पृ. 3)

''तेवरीपक्ष अपने धारदार तेवर लेकर आज की कुंठित मानसिकता पर प्रहार करने जा रही है। स्वागत है। (विक्रम सोनी, तेवरी पक्ष-प्रवेशांक, पृ.3)

'तेवर इसलिए तेवरी है' शेष पृष्ठ 9 पर

दर्शन बेज़ार के संद्यः प्रकाशित तेवरी संग्रह
ख़तरे की भी आहट सुन
की आगामी 16 पृष्ठों पर क्रमशः प्रस्तुति

Scanned by CamScanner

''वाकई आज़ हिन्दी साहित्य को तेवरी की आवश्यकता है।'' (पंडित करनालवी, तेवरीपक्ष-प्रवेशांक, पृ.3)

''तेवरी-पक्ष के इस सृष्टा का हम अपने लौह-तेवरों के साथ अभिनंदन करते हैं।'' (राजकुमार निजात, तेवरीपक्ष प्रवेशांक, पृ. 4)

''इसमें कोई संदेह नहीं, आप हिन्दी कविता को एक नया मोड़ देने में समर्थ हुए हैं।'' (क्रांतिकारी मन्मथनाथ गुप्त, तेवरीपक्ष, जु.-दिस.- 84, पृ. 3)

''पत्रिका का तेवर देखकर प्रसन्नता हुई। मुझे लगा कि आप राष्ट्रीय कार्य के लिए प्रतिबद्ध हैं।'' (कमलकिशोर गोयनका, तेवरीपक्ष, जु.-दिस. 84, पृ. 3)

''लुहार की सफलता में आखिरी चोट का ही महत्व नहीं होता, निशाना एक रहे, लगातार रहे। धारा के अनुकूल तैरने में तेवर नहीं होता, कुव्यवस्था के प्रतिकूल तैरने में सार्थकता होती है।'' (डॉ. राष्ट्रबन्धु, तेवरीपक्ष-जु. दि. 84, पृ.3)

''तेवरीपक्ष पढ़कर लगा कि मैं तो अन्जाने ही तेवरियाँ लिख रहा हूँ। (कुन्दनसिंह 'सजल', तेवरीपक्ष, जु.-दिस. 84, पृ.5)

''प्रत्येक माँ अपनी सन्तान को साहसी देखना चाहती है। अत्याचार को सहन करना भी अपराध है।'' (शकुन्तला सिरोठिया, तेवरीपक्ष- जु.दिस.-८४, पृ.५)

''यदि यही आन्दोलन विदेश से आया होता हो यहाँ के मूर्धन्य साहित्यकार आलोचना नहीं करते।''(सुहैल अख्तर, तेवरीपक्ष -जु.दिस. जु.दिस. 84, पृ.5)

''पूर्वज का घायल होना, युवाओं की मुट्ठी नहीं बँधवायेगा, तो वर्तमान नपुंसक कहलायेगा। कलम से उठी आग, लोहार की भट्टी की आग बने।'' (मुकुट सक्सेना, तेवरीपक्ष-जु.-दिस. 84, पृ. 8)

''तवेरियां आदि से अन्त तक अलाव की आग की एक-सी तपिश लिए हैं।'' (नीतीश्वर शर्मा नीरज, तेवरीपक्ष-जु.-सित. 89, पृ. 8)

''हिन्दी ग़ज़ल मुझे भी कभी समझ नहीं आयी। उर्दू ग़ज़ल को हिन्दी में लाकर नये कवियों ने बहुत अहित किया है। इस विधा का तेवरी के रूप में ही यदि नया ढांचा देकर प्रतिष्ठित किया जाये तो हर्ज नहीं।'' (डॉ. रंजनजैदी, तेवरीपक्ष-जन.मार्च- 89, पृ. 3)

तेवरी और ग़ज़ल के इस तुलनात्मक विवेचन/ विश्लेषण से यह तथ्य तो पूरी तरह साफ हो ही जाता है कि तेवरी की काया में भले ही कुछ लोगों को ग़ज़ल की माया के दर्शन होते हों लेकिन तेवरी इस कारण ग़ज़ल नहीं हो सकती क्योंकि उसकी काया का हर अंग (शिल्प) आग की भाषा बोलता है, जबकि ग़ज़ल का शिल्प केवल प्रेमिका के जूड़े को बांधता और खोलता है। ग़ज़ल के रदीफ-काफिये या शे'र प्रेमी-प्रेमिका को रिझाने-मनाने, रति के लिये उकसाने के साधन हैं। जबकि तेवरी की तुकान्त, द्विपदिका या छन्द-व्यवस्था लोहार के हथौड़े की वह चोट, या चोट का संगीत है जो लोहे को हथियार की शक्ल देता है। तेवरी को इसलिए तेवरी मानना पड़ेगा क्योंकि इसकी वाणी में ईलू-ईलू की आवाज नहीं। इसकी आँखों से प्रेम के झरने नहीं झरते। तेवरी तो-पुराण-पुरुष शिव की तीसरी आँख है-

''पुराण-पुरुष की तीसरी आँख जब खुलती है तो किसी ज्वालामुखी की भाँति तप्त लावा उगलती है और पाप का प्रत्यूह तथा कामाचार का अवरोध जलकर राख हो जाता है। तेवरी के शब्द-संधान को देखकर ऐसा प्रतीत होने लगा है कि वर्तमान सामाजिक

Scanned by CamScanner

विसंगतियों और सामाजिक विद्रूपताओं में आग लगाने के लिए युवा आक्रोश की तीसरी आँख खुल गयी है।''(डॉ. रवीन्द्र भ्रमर, तेवरी पक्ष-जन.मार्च. 87, पृ. 23)

तेवरी के बारे में आदित्य श्रीवास्तव का कहना है-''परिस्थितियाँ दिन पर दिन बदतर होती जा रही हैं। चारों ओर वातावरण में घुटन, संत्रास, भ्रष्टाचार, अन्याय व्याप्त है। ऐसे में प्रेमालाप करना ठीक उसी भाँति है, जिस प्रकार कोई अपनी झोंपड़ी में आग लगने पर मल्हार गाये। (तेवरीपक्ष-जन.मार्च.-87, पृ. 18)

''तेवरी के तेवर देखने-पढ़ने लायक हैं। गोया ये बदलते वक़्त की तस्वीर हैं। तेवरी के तेवर कुछ ज्यादा ही तेज होने के कारण तेवरी का फार्म ग़ज़ल से बिलकुल अलग है। (श्रीराम मीना, तेवरीपक्ष-जन. मार्च- 87, पृ. 20)

''वक्त की त्यौरी के साथ आदमी के तेवर भी बदल रहे हैं। ये तेवर यथार्थोन्मुखी होने के कारण खोखले आदर्शों की लहरों को चीर रहे है। '' (डॉ. निष्काम, तेवरीपक्ष-जन.-मार्च. 87, पृ. 21)

तेवरी अपना काव्यशास्त्र स्वयं रच रही है-

''तेवरी, भाषा, छंद, अलंकार, मुहावरे, प्रतीक सभी स्तरों पर स्वतंत्र इयत्ता की स्वामिनी है, अतः ग़ज़ल से उसके विरोध का प्रश्न ही नहीं उठता। तेवरी की भाषा अत्यंत परुष और तीखी है। उसका शब्द-शब्द अग्नि-वाण होता है, जो कुव्यवस्था के रावण को नष्ट करने के लिये सदा उद्यत रहता है। तेवरी भीड़ में से शब्दों को उठाती है और भीड़ के दिलो-दिमाग में बो देती है। तेवरी कई दृष्टियों से ग़ज़ल से भिन्न है। ग़ज़ल में शृंगार प्रधान होता है और उसका प्रत्येक शे'र अपना अलग अस्तित्व रखता है जबकि तेवरी दैहिक शृंगार के विरुद्ध है। ग़ज़ल में मतला-मक्ता का अनुशासन मानना पड़ता है, जबकि तेवरी में ऐसा करना आवश्यक नहीं। ग़ज़ल के काफिया-रदीफ, तेवरी की तुकों से भाव तथा भाषा में भिन्नता लिए होते हैं। अच्छी तेवरी की तुक ग़ज़ल के रदीफ-काफिये के लिए अनुपयुक्त हो सकती है-अपनी निजी विशेषता के कारण।

तेवरी में मुहावरों तथा प्रतीकों का विशेष महत्व है। इन्हीं से तेवरी सप्रमाण है। तेवरी के प्रतीक ऐसे हैं जो जनसमान्य की समझ में तुरन्त आते हैं और उसे वस्तु-स्थिति का ज्ञान करा देते हैं। ये प्रतीक राजनैतिक, नौकरशाही, प्राकृतिक, दैनिक व्यवहार सम्बन्धी, वैज्ञानिक तकनीकी ऐतिहासिक व पैराणिक वातावरण सम्बन्धी, रोग सम्बन्धी, पशुपक्षी सम्बन्धी तथा अन्य विविध प्रकार के हैं। (डॉ. कृष्णावतार 'करुण', तेवरीपक्ष-जन.-मार्च. 87, पृ. 27)

तेवरी के छंदों में माटी की सुगन्ध-

तेवरी में लयात्मकता या गेय तत्त्व का आधार 'फाइलातुन फाअ फैलुन आदि' न होकर हिन्दी के छन्द हैं। जिनका मकरंद अलग ही तरह का आनंद देता है। तेवरी में हिन्दी छन्दों के प्रयोग को लेकर डॉ. रवींद्र भ्रमर कहते हैं-''तेवरी' में हिन्दी छन्दों का प्रयोग विशेष दृष्टव्य है। आल्हा के लोकछन्द में बुनी गयी एक सफल रचना इस प्रकार है-

'हाथ जोड़कर महाजनों के पास खड़ा है होरीराम
ऋण की अपने मन में लेकर आस खड़ा है होरीराम।

Scanned by CamScanner

(सुरेश त्रस्त, कबीर ज़िन्दा है)

दोहाछन्द में तेवरी का प्रयोग भी देखिए-

रोजी-रोटी दे हमें या तो ये सरकार
वर्ना हम हो जायेंगे गुस्सैले-खूंख्वार।

'तेवरी'-रचनाओं में पुराने छन्दों के अभिनव प्रयोग के साथ जन-भाषा की मुखरता और सम्प्रेषण की सहजता एक विशिष्ट आयाम को उभारती है। (डॉ. रवीन्द्र भ्रमर, तेवरीपक्ष-जन. मार्च. 87, पृ.16)

'तेवरी को सहज भाषा में उठाया गया है एवं इसमें चौपाई, दोहा, आल्हा, धनाक्षरी, सवैया आदि छंद, सभी कुछ शामिल है। इसके अन्तर्गत ग़ज़ल की तरह कोई नियम या विधान नहीं।'' (आदित्य श्रीवास्तव, तेवरीपक्ष-जन.मार्च.-87, पृ.18)

''दरअसल तेवरी नये तेवरों के अनुशीलन की विधा है, जिसमें राग है, लय है और सबसे बड़ी बात इसकी मारक क्षमता है।'' (श्रीराम मीना,तेवरीपक्ष-जन.मार्च.87, पृ. 20)

तेवरी ग़ज़ल की नकल नहीं-

''तेवरी का भावपक्ष निष्पक्ष है, जो हमारे लिए व समाज के लिए एक दर्पण के तुल्य है, जिसमें समाज के शोषित, सीध-सादे लोग यह देख सकते हैं कि हमारी खून-पसीने की कमायी का क्या होता है?'' (रामानुज वर्मा, तेवरीपक्ष, जन.-मार्च. 87, पृ. 31)

तेवरी टेस्ट-टयूब बेबी नहीं-

''तेवरी की उत्पत्ति युगानुरूप है। समय की माँग के अनुसार ही इसका जन्म हुआ है। यह टैस्ट-ट्यूब बेबी की तरह कृत्रिम गर्भाधान से उत्पन्न अथवा जोड़-तोड़ से बनाया गया रूप नहीं है बल्कि लघुकथा की तरह पाक साफ वैधानिक एवं प्राकृतिक (स्वाभाविक) तौर पर उत्पन्न रूप है।'' (रवीन्द्र कंचन, तेवरी पक्ष- जन.मार्च. 87, पृ. 32)

तेवरी ग़ज़ल से इसलिए भी अलग है-

तेवरी के बारे में विभिन्न विद्वानों के अभिमतों से जो तथ्य उभरकर आते हैं उनके आधार पर तेवरी ग़ज़ल से इसलिए भी अलग हो जाती है क्योंकि- तेवरी में उरूज-रुक्न-अर्कान का विधान नहीं है, बल्कि हिन्दी के छन्दों का प्रावधान है। वस्तुतः तेवरी के लिए हिन्दी के छन्द ही उसके भाव-रूप जैसे आक्रोश, विरोध, विद्रोह को व्यक्त के लिए हर प्रकार रागानुकूल है, जबकि ग़ज़ल की बह्र उसके भावरूप रति या शृंगार के पक्ष के रागानुकूल है। 'मारि-मारि, भू पै डारि, जां निकारि पाक की' जैसी ओजस अभिव्यक्ति को केवल हिन्दी का छन्द ही व्यक्त कर पाने में समर्थ हैं। ग़ज़ल की बहर में यदि इस भावात्मकता को बांधा जाएगा, तो सारा गुड़, गोबर नजर आयेगा।

तेवरी की तुक-व्यवस्था भी ग़ज़ल की तुक व्यवस्था से इस कारण भिन्न है क्योंकि तेवरी का तुकविधान उस भाव का सम्मान करते हुए उसे आगे बढ़ता है, जिसमें व्यवस्था विरोध की तीव्रता होती है। तुकों के रूप में प्रयुक्त 'चाकू, हलाकू, डाकू, लड़ाकू' जैसे तुकान्त तेवरी के भावपक्ष को परिवक्व अवस्था तक लाने-पहुंचाने में यदि पूरी तरह सहायक हो सकते हैं तो ग़ज़ल के भावपक्ष का उत्कर्ष 'प्यार', यार, दीदार, रुख्सार' जैसे

Scanned by CamScanner

शब्दों को तुक के रूप में लाने या निभाने से ही सम्भव है। ग़ज़ल का हर शे'र अपने स्वतंत्र रूप में ग़ज़ल को इश्क-मोहब्बत के खत लिखता है। ग़ज़ल में प्रेम का व्यापार चलता है और प्रेम में घनत्व या एकाकीपन में होता है। इसलिए ग़ज़ल का हर शे'र किसी प्रेमी या आशिक की तरह 'एकला चलो रे' की नीति का अनुकरण करते हुए अपनी भूमिका निभाता है।

शे'र जैसी स्वतंत्रता चूँकि तेवरी के भावपक्ष के लिए अनुकूल नहीं है, अतः तेवरी के तेवर स्वतंत्र न रहकर समवेत या एक स्वर में अनीति या अत्याचार का प्रतिकार या विरोध करते हैं। तेवरों के इस गठन या संगठन से ही आक्रोश जैसा भाव, स्थायी भाव बन जाता है और विरोध-रस की परिपक्व अवस्था को प्राप्त होता है।

''आपकी जो अदाओं में है, वो सितम इन फिजाओं में है। कल तलक जुल्म सहता रहा, हौसला अब भुजाओं में है।'' (शिवनारायण शिव, ग़ज़ल से ग़ज़ल तक, पृ. 115) जैसे एक ही ग़ज़ल के दो शे'रों के स्वतंत्र किन्तु परस्पर भावविरोधी कथन ग़ज़ल की रसात्मकता के लिए अनुकूल हो सकते हैं क्योंकि जेठ की दुपहरी के ताप से आकुल साँप-बाघ, हिरन और मृग एक ही पेड़ की छांव के नीचे, एक-दूसरे पर हमला न करते हुए चुपचाप सो सकते हैं। परस्पर विरोधी या एक दूसरे के दुश्मन शे'रों को ग़ज़ल के छाँव में सुलाना, ग़ज़ल या हिन्दीग़ज़ल का अपनी जमीन से भले ही जुड़ जाना हो या उसका आदर्श हो, लेकिन ऐसे आदर्श का उत्कर्ष तेवरी में वर्जित है। तेवरी के तेवरों (द्विपदिका) की सार्थकता तो तेवरों के उस समूह या योग से सिद्ध होती है, जिसमें हर तेवर का स्वभाव, समभाव के साथ समाज विरोधी तत्त्वों के घाव करता है।

तेवरी और ग़ज़ल के उपरोक्त विश्लेषण से तेवरी और ग़ज़ल के कथ्य अर्थात् आत्मरूप या भावरूप के साथ-साथ शिल्प सम्बन्धी विशेषताओं का अन्तर पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है। ''फिर भी कुछ लोग तेवरी को ग़ज़ल ही मानें तो क्या करोगे? कैसे और किस-किस से लड़ोगे? उन्हें कैसे समझाओगे कि नयी विधाएं समय की माँग के अनुसार बनती रहती हैं। ऐसा न होता तो लोग आज भी ऋचाएँ ही रचते-पढ़ते या सिर चढ़ाते रहते।'' (तेवरीपक्ष, जन.मार्च.-87, पृ.41)

वरिष्ठ साहित्यकार बाबूराम वर्मा के उपरोक्त सवालों का समाधान तो वैसे यही है कि ग़ज़ल के मद में मस्त ग़ज़लकार अपनी आँखें खोलें और ग़ज़ल और तेवरी को तोलें और बोलें कि तेवरी वास्तव में तेवरी है। सच तो यह है कि तेवरी का शिल्प और भाव-पक्ष किसी सवालों की झड़ी लगाते यक्ष को उत्तर देने के लिए मजबूर नहीं है। फिर भी अगर ग़ज़लकारों को यह मंजूर नहीं है तो तेवरी के बारे में कुछ तथ्य और सत्य प्रस्तुत करना, हो सकता है उनकी मुंदी हुई आँखों को खोलने में सहायक हो। अतः तेवरी और ग़ज़ल के बीच भिन्नता के कुछ पक्ष और प्रस्तुत हैं-

''ग़ज़ल के मक्ते में तखल्लुस (उपनाम) का होना बेहद जरूरी है क्योंकि मक्ता समाप्ति-सूचक शब्द है और तखल्लुस उसे अन्य शे'रों से भिन्न करता है।'' (महावीर प्रसाद मूकेश, ग़ज़लः छन्दचेतना, पृ. 40) जबकि तेवरी के किसी भी तेवर में तेवरीकार अपना 'उपनाम' ला सकता है। या अपने उपनाम को हर तेवर के अन्त में अन्त्यानुप्रासिक व्यवस्था में निभा सकता है। तेवरीकार दर्शन बेजार की कृति 'ये जंजीरें कब टूटेंगी' में एक तेवरी के हर तेवर के अन्त में 'बेज़ारजी' शब्द का प्रयोग 'उपनाम' के रूप में 'बेजार' को सम्बोधित

Scanned by CamScanner

करते हुए हुआ है। इस 'उपनाम' की आवृत्ति ने हर बार यातना-त्रासदी के शिकार आदमी की दुःखती रग को छुआ है। वैसे तेवरी में यह भी कोई आवश्यक नहीं कि उपनाम का प्रयोग हो ही।

ग़ज़ल के शे'र की जिन दो पंक्तियों में स्वर के आधार पर अन्त में तुकों का मिलान होता है, उसे मतला कहा या माना जाता है। पिंगलाचार्य महावीर प्रसाद मूकेश ने अपनी पुस्तक 'ग़ज़लः छन्द चेतना' के पृष्ठ-३८ पर मतला का अर्थ-'सूर्यादि के उदित होने का स्थल', 'उफुक (क्षितिज) का वो मुकाम जहां सुबह की रोशनी पहले-पहल जाहिर होती है', 'मशरिकी फजा' अर्थात् पूर्व दिशा की शोभा या प्रातः काल होना आदि-आदि बतलाये हैं। मूकेशजी द्वारा बतायी गयीं इन सारी परिभाषाओं से यह भी स्पष्ट है कि ग़ज़ल के संदर्भ में 'मतला' प्रेम-भोग विलास के अनुप्रास के यदि प्रातःकाल का प्रतीक है तो तेवरी में वह तेवर जिसकी दोनों पंक्तियों में अत्यानुप्रासिक व्यवस्था का योग होता है, उसमें अंधकार से लड़ने, चराग लेकर आगे बढ़ने, व्यवस्था से जूझने-टकराने की तैयारी की जाती है। स्पष्ट है, यह तैयारी, न तो एक प्रेमी द्वारा प्रेमिका के दर्शन पाने के लिए प्रेम की राह पर पड़ा पहला कदम है और न उजाले का अंधकार के बीच छाया भरम है। तेवरी में तो हर प्रारम्भिक दो पंक्तियां आहत भावनाओं का या तो करुण बयान हैं या किसी जन-घाव का प्राथमिक उपचार हैं। इस उपचार के लिए यह भी कोई आवश्यक नहीं है कि इन दोनों पंक्तियों में 'मतला' की तरह तुकों का मिलान हो ही। ग़ज़ल के लिए मतला आवश्यक ही नहीं, परमावश्यक है जबकि तेवरी की रचना कवित्त के समान तुकों के विधान में भी हो सकती है।

तेवरी हिन्दी-भाषा की देवनागरी लिपि में लिखी जाती है-

देवनागरी में मात्रा को गिराना-बढ़ाना पूरी तरह अनुचित माना गया है, वर्णिक छन्द भले ही इसके अपवाद हों, छन्दों के औसत रूप में मात्रा गिराना किसी भी प्रकार स्वीकृति नहीं है। अतः तेवरी चाहे वर्णिक छन्दों में लिखी जाये या मात्रिक छन्दों में उसके लयात्मक ओज की पहचान त्रुटिहीन मात्राओं या वर्णों के प्रयोग पर निर्भर है जबकि ग़ज़ल में भले ही 'फाअ, फऊल- फैलुन' के आधार पर तक्ती की जाती हो लेकिन इस 'फाअ-फाऊल-फैलुन' में मात्राओं को गिराने का चलन इतना अधिक मान्य कर दिया गया है कि ग़ज़ल का लयात्मक आधार बीमार नजर आता है। अतः स्पष्ट है कि तेवरी के छंद की शुद्ध नाप का माप यदि त्रुटिहीन मात्रा-प्रयोग है तो ग़ज़ल को मापने का आधार बहर में प्रयुक्त हुए रुक्न या अर्कान हैं। ग़ज़ल बहर में कहीं जाती है। तेवरी मात्रिक और वर्णिक छन्दों में लिखी जाती है।

''हिन्दी में दो या दो से अधिक शब्दों के मिलन को 'समास' कहते हैं और समास द्वारा जो नया स्वतंत्र शब्द बनता है, उसे 'समस्त' शब्द कहते हैं। समास के अनेक भेद हैं जिनमें एक 'द्वंद्वसमास है।' द्वन्द्वसमास' के नियमाधीन गठित शब्दों का विग्रह करते हुए विभक्त शब्दों के मध्य संयोजक अव्यय 'और' लगाया जाता है। जैसे-रात और दिन, पाप और पुण्य, तन और मन (महावीर प्रसाद मूकेश, ग़ज़ल छन्द चेतना पृ. 44)

मूकेशजी के इस सामासिक विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी में 'द्वन्द्वसमास' के नियमाधीन दो शब्दों के बीच योजक शब्द 'और' है तो उसको 'और' ही लिखा जाएगा।

Scanned by CamScanner

यदि समास द्वारा जो नया शब्द बनेगा उसमें योजक चिन्ह लगाने के बाद 'और' योजक शब्द लुप्त हो जायेगा। जैसे-रात और दिन का सामासिक रुप होगा 'रात-दिन'।

तेवरी में वाक्यांश 'रात और दिन' को या तो 'रात और दिन' ही लिखा जायेगा या द्वन्द्वसमाज के नियमानुसार 'रात-दिन' के रूप में प्रयुक्त होगा जबकि ग़ज़ल की पुख्ता जमीन के लिये यह वाक्यांश होगा 'रातो-दिन' या 'रात-ओ-दिन। तेवरी की जमीन ग़ज़ल की जमीन से सर्वथा भिन्न है। अतः तेवरी में दो या दो से अधिक शब्दों के योग से सम्मिलित भाव का बोध कराने वाले सामासिक शब्दों के उच्चारण ग़ज़ल के सामासिक विधान के बिलकुल विपरीत हैं।

ठीक इसी प्रकार तेवरी में प्रयुक्त स्वर, व्यंजन, विसर्ग संधियों के नियमाधीन दो शब्दों के मिलने के कारण ध्वनि या ध्वनियों में परिवर्तन आ जाता है, उस परिवर्तन से बने संधि-शब्दों के रूप, ग़ज़ल के संधिशब्दों के रूप से एक दम विपरीत या भिन्न होते हैं। तेवरी में संधि का आधार यदि स्वर है तो ग़ज़ल में बहुधा लयात्मक संधियों के रूप दृष्टिगोचर हैं।

कुछ अपवादों को छोड़कर तेवरी में उपसर्ग 'अ', 'अधि', 'अन', 'अप', 'अभि', 'अव', 'आ', 'उप', 'कु', 'सु', 'चिर', 'प्रति', 'स','स्व', को शब्द के पूर्व में जोड़कर मूल शब्द के अर्थ में परिवर्तन लाया जाता है, जबकि ग़ज़ल की जमीन को चमकाने के लिये शब्द के पूर्व में 'दर', 'ना', 'बा' 'बे' 'ला' आदि उपसर्ग जोड़कर मूल शब्द को नया अर्थ प्रदान किया जाता है।

अस्तु- ग़ज़ल और तेवरी के अन्तर को लेकर लिखी गयी उपरोक्त सारी बातों/तथ्यों से निष्कर्ष यही निकलता है कि ग़ज़ल की अपनी अगर हुस्नो-इश्क की भोगवादी दुनिया है तो तेवरी का तेवरीपन हिन्दी भाषा की खूबियों के साथ उस कथन से नापा या मापा जाता है, जिसमें हर प्रकार की अराजकता-अवांछनीयता, यातना, शोषण उत्पीड़न आदि के प्रति 'असहमति, प्रतिकार या फटकार' की लयात्मकता एक तालबद्ध तेवर के साथ प्रकट होती है।

वरी इसलिए भी तेवरी है-

'वृहत हिन्दी शब्दकोश' (सम्पादक-कालिका प्रसाद, पष्ठम सं. जन. 1989) के पृ. 490, 493 पर तेवर (पु.) शब्द का अर्थ-'क्रोध सूचक भ्रूभंग, क्रोध भरी दृष्टि, क्रोध प्रकट करने वाली तिरछी नज़र बताने के साथ-साथ 'तेवर बदलने' को क्रुद्ध होना बताया गया है। 'तेवरी (स्त्री.), त्यौरी' से बना है। त्यौरी या तेवरी का अर्थ है-' माथे पर बल पड़ना, क्रोध से भृकुटि का ऊपर की ओर खिंच जाना'।

कुछ अति ज्ञानी साहित्यकार तेवरी को ग़ज़ल का रूप मानकर, काव्य की नूतन विधा 'तेवरी' पर हमला बोलते आ रहे हैं और तेवरी को ग़ज़ल ही मानने या मनवाने पर आमादा हैं। तेवरी ग़ज़ल कैसे है, वे इस प्रश्न का उत्तर देने से कतराते हैं। वे हर समय तेवरीकारों को कुछ इस तरह गरियाते हैं-''तेवरी-कवि मन-बहलाव के मदारी प्रतीत होते हैं।'' (डॉ. राजेश्वरी शांडिल्य)

''आप ग़ज़ल को तेवरी क्यों कहना चाहते हैं। (डॉ. सुधेश)

हमारा उत्तर सिर्फ इतना-सा है कि-कोठे पर बैठने वाली चम्पाबाई और

Scanned by CamScanner

साम्राज्यवादियों से टक्कर लेने वाली रानी लक्ष्मीबाई में क्या अन्तर है, उसे पहचानो। प्रेमिका को बाँहों में भरने के जोश और कुव्यवस्था से पीड़ित आमजन के आक्रोश को एक ही खाने में फिट मत करो।

हमारे ऐसे ही अनेक उत्तरों को दरकिनार कर ग़ज़ल के महापंडित, परम विद्वान अन्ततः ऐसे व्याख्यान पर उतर आये हैं-''बुरा न मानें तो एक बात कहूँ-''अब तक पढ़ी तमाम तेवरियाँ ग़ज़ल का बिगड़ा रूप हैं। (ज्ञान प्रकाश विवेक)

तेवरी और ग़ज़ल में मूलभूत अंतर यह है-

(1) ग़ज़ल का अर्थ है-' प्रेमिका से प्रेमपूर्ण बातचीत' है, जबकि तेवरी समकालीन यथार्थ की सत्योन्मुखी प्रस्तुति है।

(2) ग़ज़ल की सम्पूर्ण व्यवस्था में एक ही बहर या छंद का प्रयोग किया जाता है जबकि अब अधिकांशतः तेवरी के हर तेवर (कथित शे'र) में दो छंदों का समावेश कर सम्पूर्ण तेवरी को दो छंदो में लिखी जाने लगा है। तेवरी की पहली तीसरी पाँचवीं, सातवीं... पंक्तियों में यदि १६ मात्रा का कोई निर्धारित छन्द हो तो दूसरी चौथी छठवी...पंक्ति में 14,18,20,24.... मात्राओं का अलग छन्द प्रयोग में लाया जा सकता है और इस प्रकार ग़ज़ल के शे'र से पृथक विशेषतावाला दो पंक्तियों का तेवर बनाया जा सकता है। मेरी समस्त तेवरियों में इस विशेषता का आलोक आपको अवश्य दिखायी देगा। यही व्यवस्था वर्णिक छन्दों के साथ भी आलोकित होगी। प्रस्तुत तेवरी या तेवरियों में कौन-सा नवछंद है, यह अब बहस का विषय हो सकता है। मैंने तो नवछंदों में तेवरियाँ लिख दी हैं। छन्द कौन-सा है, सुधिजन बताने का कष्ट करते हैं तो मैं उनका आभारी रहूँगा।

(5) तेवरी मात्रिक व वर्णिक हिन्दी छन्दों में लिखी जाती हैं, जबकि ग़ज़ल की जान बहर, रुक्न, और अर्कान हैं।

(6) तेवरी मक्ता और मतला जैसी व्यवस्था को तो छोड़ती जा ही रही है, साथ ही ऐसी व्यवस्था को जोड़ती जा रही है, जिसके अन्तर्गत एक तरफ पहली पंक्ति की तुक तीसरी,पाँचवीं, सातवीं, नवमीं ...पंक्ति से मिलती है तो दूसरी तरफ उपरोक्त तुक व्यवस्था से अलग या यूँ कहें विपरीत दूसरी, चौथा, छठवीं, आठवीं पंक्ति में तुक व्यवस्था का नया आलोक परिलक्षित होता है। जबकि ग़ज़ल में ऐसा रूप मान्य नहीं है।

(7) कुछ तेवरियों की निर्धारित पंक्तियों में आन्तरिक तुक सौन्दर्य भी मिलता है, जो कि ग़ज़ल से प्रथक रूप लिये होता है।

(8) तेवरी के हर तेवर में एक नहीं दो-दो स्वरांत (कथित काफिये) आलोकित होते लगे हैं जबकि ग़ज़ल के हर शे'र में एक ही काफिया आता है। ठीक यही व्यवस्था तेवरी के समांत (कथित रदीफ) पर भी लागू होती है।

इस व्यवस्था के उलट कहीं-कहीं ग़ज़ल के रदीफ-काफियों जैसी व्यवस्था यदि तेवरी में दृष्टिगोचर होती भी है तो यह व्यवस्था 'कवित्त' में भी मिलती है। क्या कवित्त को ग़ज़ल कहने या मानने का साहस किसी में है?

ग़ज़ल से अलग तेवरी की इन सारी विशेषताओं को दरकिनार कर अगर कोई ग़ज़ल का महापंडित तेवरी को फिर भी ग़ज़ल मानता है तो उसे नाटक और एकांकी, लघुकथा और लघुकहानी, चुटकुला और व्यंग्य के अन्तर को ध्यान में रखते हुये यह बताना चाहिये कि ग़ज़ल की हू-ब-हू नकल 'हज़्ल', ग़ज़ल से अलग विधा कैसे और क्यों

Scanned by CamScanner

सरकार पंजीकरण संख्या-51714/87

शोधार्थियों के लिये एक महत्वपूर्ण पुस्तक

विचार और रस

(रस-निष्पत्ति का वैचारिक विवेचन

लेखक-रमेशराज

राष्ट्रीय बाल कविताएँ

कवि-रमेशराज

प्राप्ति स्थल-बजरंग प्रकाशन, सागरपुर, दिल्ली

ख़तरे की भी आहट सुन

शीघ्र प्रकाश्य तेवरी-संग्रह (तेवरीकार-दर्शन बेजार)

सार्थक-सृजन, १५-१०९, ईसानगर, निकट-थाना सासनीगेट, अलीगढ

महत्वपूर्ण तेवरी संग्रह

(1) अभी जुबाँ कटी नहीं	संपादक- रमेशराज
(2) कबीर ज़िन्दा है	संपादक- रमेशराज
(3) इतिहास घायल है	संपादक- रमेशराज
(4) एक प्रहारः लगातार	तेवरीकार-दर्शन बेजा
(5) देश खण्डित हो न जाए	तेवरीकार- दर्शन बेजार

सार्थक-सृजन, 15-109, ईसानगर, निकट-थाना सासनीगेट, अलीगढ

प्रतिष्ठार्थ-

300)

6000) 300 [illegible]

[illegible] -

संपादक/ प्रकाशक/ मुद्रक रमेशराज द्वारा सार्थक सृजन प्रकाशन कार्यालय सार्थक-सृजन, 15-109, ईसानगर, निकट-थाना सासनीगेट, अलीगढ़ के लिये शारदा प्रिंटिंग प्रैस हेतु आशू प्रिंटिंग प्रैस, अचल तालाब, अलीगढ़ से मुद्रित।

Scanned by CamScanner